RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-04
April -2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

संस्कृत नाटकों में निहित सांस्कृतिक सन्दर्भ

[1]हंसराज मीना [2]डॉ. सहदेव शास्त्री

[1]शोधार्थी, संस्कृत, स.ध.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,ब्यावर (राज.)
[2]शोध–निर्देशक, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 16 Apr 2020

Keywords
संस्कृति, आकर्षित, नितान्त, सुहृद, समकालीन।

ABSTRACT

संस्कृति मानव जीवन की अमूल्य निधि होती है। किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व उसकी संस्कृति के आधार पर अवलम्बित रहता है। संस्कृति किसी देश या जाति की आत्मा होती है। संस्कृति से ही उन सभी संस्कारों का बोध होता है जिनके सहारे मानव अपने सामाजिक जीवन के आदर्शो का निर्माण करता है इसलिए संस्कृति किसी एक युग की कृति न होकर विभिन्न युगों के मानव समूहों तथा समाज के सामूहिक प्रयत्नों का परिणाम होती है।

भारतीय संस्कृति का अध्ययन और अन्वेषण पिछले सौ वर्षों से हो रहा है। अनेक सुहृद मनस्वी अंग्रेजों तथा अन्य पश्चिमी विद्वानों ने इसको आरम्भ किया था।[1] उनके प्रयास ने समकालीन भारतीयों की आँखे अपनी संस्कृति की अनुपम महत्ता की ओर आकर्षित की और पश्चिमी सभ्यता की मानसिक सामग्री का भी वह अभाव पूरा किया जिसकी उसे अत्यन्त आवश्यकता थी। आज पूर्व और पश्चिम के देशों में समान रूप से यह अध्ययन और भी संलग्नता से किया जा रहा है।[2] इस अनुपम और विलक्षण संस्कृति के उत्तराधिकारी होने के नाते हमारा अनिवार्य कर्त्तव्य हो जाता है कि हम अपनी राष्ट्रीय संस्कृति के विकास की रूपरेखा से परिचित हो ताकि वर्तमान समस्याओं, प्रयासों के प्रकाश में माप–तौल करके हम अपना मार्ग खोज सकें। हम भारतीयों के लिये तो यह ज्ञान नितान्त आवश्यक है। हमारा राष्ट्र और समाज आज सद्यः प्राप्त स्वतंत्रता का कवच लिये अपूर्व उत्साह और साहस के साथ भविष्य के लिये नये रास्ते खोज रहा है परन्तु इतिहास के विद्यार्थी भली–भांति जानते हैं कि ध्येय और उसकी पूर्ति बहुत कुछ हमारे पूर्वगामी अनुभव और विकास से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती।[3] अतीत के बन्धनों से मुक्त होना सरल नहीं होता। वह केवल हमारे प्रयासों की सीमाएँ ही निर्धारित नहीं करता अपितु उनकी सफलता के मार्ग और सम्भावित ध्येयों का भी एक पर्याप्त मात्रा में निर्देशन करता है इसलिए अति–आवश्यक हैं कि प्रत्येक भारतीय नागरिक अपनी राष्ट्रीय संस्कृति के विकास की रूपरेखा से परिचित हो।[4] भारतीय संस्कृति का ज्ञान हमारे लिये राष्ट्रीय अहंकार के पोषण करने का साधन नहीं हैं बल्कि एक आवश्यक सामयिक प्रयास है। इसके अध्ययन से न केवल हमें उसके गुण–दोष ही ज्ञात होंगे बल्कि यह भी ज्ञात होगा कि किन कारणों से उसका उत्कर्ष और अपकर्ष हुआ।[5] निःसन्देह भारतीय संस्कृति का अतीत अत्यन्त उज्ज्वल था लेकिन हमारा दायित्व है कि हम भविष्य को भूत से भी अधिक उज्ज्वल और गौरवपूर्ण बनाये। यह सांस्कृतिक विकास के अध्ययन से ही सम्भव है।[6] इसलिए यह अति–आवश्यक हैं कि प्रत्येक भारतीय नागरिक अपनी राष्ट्रीय संस्कृति के विकास की रूपरेखा से परिचित हो। यह ज्ञान हमारी आज की समस्याओं के निराकरण में सहायक हो सकेगा। यदि हम संस्कृति को जीवन के महत्त्वपूर्ण एवं सार्थक रूपों की आत्मचेतना कहें तो अनुचित नहीं होगा।[7] डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है, ''संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो सारे जीवन में व्याप्त हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का साथ है।''[8]

❖ संस्कृति का स्वरूप–

मानव एक ओर बाह्य विश्व का संस्कार करके अथवा प्रकृति पर विजय प्राप्त करके उसमें परिवर्तन करने के लिये प्रत्यनशील रहा है दूसरी ओर वह अपनी आत्मा का संस्कार करके उसमें परिवर्तन उत्पन्न करने में संलग्न रहा है।[9] मानव ने बेडौल पाषाण या संगमरमर को तराश कर सुन्दर मूर्तियों या अन्य वस्तुओं का निर्माण किया है। यह क्रिया बाह्य विश्व का संस्कार है, जिसे संस्कृति का भौतिक स्वरूप कहा जाता है किन्तु मानव निर्मित पाषाण या संगमरमर की मूर्तियाँ अन्य वस्तुओं में जो सौन्दर्य और कला की श्रेष्ठ भावनाएँ तथा हस्तकौशल अभिव्यक्त होता है वह संस्कृति का आध्यात्मिक अंग है। मनुष्य के जिन क्रियाकलापों में बाह्य विश्व के संस्कार एवं परिवर्तन की प्रधानता होती है उसे भौतिक संस्कृति भी कहा जा सकता है।[10] कृषि, पशुपालन, भवन–निर्माण, यन्त्र–निर्माण, विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन आदि भौतिक संस्कृति है। इसमें बाह्य विश्व की भौतिक प्रगति की प्रधानता है। आध्यात्मिक संस्कृति में मानव की प्रकृति और आत्मा का संस्कार एवं सुधार की प्रधानता होती है।[11] संस्कृति के इस आध्यात्मिक अंश में धर्म, नीति, विधि–विधान, विद्याएँ, कला–कौशल, साहित्य, मानव के समस्त सद्गुण और

RRIJM 2015, All Rights Reserved

शिष्टाचार निहित है। संस्कृति के भौतिक तथा आध्यात्मिक अंग एक ही अखण्ड वस्तु के स्वरूप है। भौतिक व्यवहार संस्कृति की नींव हैं तथा मानसिक और आध्यात्मिक व्यवहार उस नींव पर खड़ा हुआ भव्य भवन है। संस्कृति के भौतिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप एक–दूसरे पर निर्भर होते है।[12]

❖ विषेशतायें–

भारतीय इतिहास को प्रारम्भ हुए हजारों वर्ष व्यतीत हो चुके है। हजारों वर्ष पूर्व भारतीय संस्कृति का उद्‌भव और विकास हो चुका था किन्तु भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्त्वों को आज भी देखा जा सकता है।[13] अतः कुछ गौण परिवर्तनों के बावजूद भारतीय संस्कृति का मूलभूत ढाँचा वही है। भारतीय संस्कृति की विशेषताओं द्वारा भारतीय संस्कृति के ढाँचे का चित्र खड़ा किया जा सकता है अर्थात् भारतीय संस्कृति का ढाँचा वही है जो उसकी विशेषताओं में निहित है।[14] अतः भारतीय संस्कृति के मूलभूत ढाँचे का विवेचन करने के लिये उसकी विशेषताओं का विवेचन करना समीचीन होगा –

(i) प्राचीनता।

(ii) आध्यात्मिकता ।

(iii) सहिष्णुता ।

(iv) आनुकूल्यता ।

(v) सर्वांगीणता ।

(vi) ग्रहणशीलता।

(vii) भारत की आधारभूत एकता –

(i) भौगोलिक एकता।

(ii) राजनीतिक एकता।

(iii) सांस्कृतिक एकता।

अतः भारतीय जीवन की ऊपर से दिखाई देने वाली विविधता भारतीय संस्कृति की मौलिक एकता है तथा संस्कृति की समृद्धि की सूचक है।[15] विस्तार में महान् तथा रीति–रिवाजों में विभिन्नता होते हुए भी भारत में एक मौलिक एकता रही है। भारत के भिन्न–भिन्न भागों के निवासियों ने एक मौलिक श्रृंखला के चारों ओर भाषा, साहित्य, कला–कौशल, आध्यात्मिक चिन्तन सामाजिक व्यवस्था के नाना प्रकार के फूल सँवारे है। आज भी गायन और नृत्य की अनेक शैलियाँ भारत में उन्नत दशा में है।[16] भारतीय संस्कृति की यह बहुरूपता उसकी सांस्कृतिक सम्पन्नता और सर्वांगीणता की सूचक है। प्राचीन भारत का इतिहास लिखते हुए जहाँ हम उस धर्म, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य और सामाजिक संगठन के विकास का विवेचन करते है जो सारे भारत में समान रूप से विकसित हुए वहाँ साथ ही हम उस प्रयत्न का भी प्रदर्शन करते है जो इस देश में राजनीतिक एकता की स्थापना के लिये निरन्तर जारी रहा।[17] यही कारण है कि हम भारत का एकीकृत इतिहास लिखने में समर्थ होते है।

भारत की इस समृद्ध संस्कृति ने उसकी भौगोलिक परिस्थिति और उसके ऐतिहासिक अनुभवों ने उसके धार्मिक विचारों और उसके आदर्शों ने उसे एकता एवं अखण्डता प्रदान की। सर्वगुणसम्पन्न भारतीय संस्कृति के इस ढाँचे ने काल के घातक प्रहारों एवं आक्रमणों से भारतीय संस्कृति की रक्षा की है।[18]

आलोच्य नाटककार भास, कालिदास, भवभूति एवं शूद्रक के नाटकों का काल मौर्यकाल और गुप्तकाल की सीमाओं में परिमित है। एतत्कालिक समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा प्रचलित थी।[19] पिता के जीवनकाल में कुटुम्ब का विभाजन बुरा समझा जाता था। धनिकों के कुटुम्ब में उनके सेवक वर्ग भी आते थे। ब्राह्मणों के कुटुम्बों में उनके कतिपय विद्यार्थियों की परिगणना होती थी। संयुक्त परिवार प्रथा के कारण चलाचल सम्पत्ति के विभाजन का प्रश्न जल्दी नहीं उठता था फिर भी पिता की सम्पत्ति पर सभी पुत्रों का समान अधिकार होता था। मृतक की विधवा का उसकी सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं समझा जाता था। यदि मृतक पुत्रहीन हो तो वह सम्पत्ति उसके निकट कुटुम्बियों यथा– भाई, चाचा आदि में बँट जाती थी अन्यथा वह राज्याधिकृत कर ली जाती थी। लड़की का कुटुम्ब की सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं होता था।[20] शिक्षा एवं आर्थिक दृष्टि से यह प्रथा अत्यन्त सफल थी।

विवेच्यकाल में विवाह का रूप बहुत कुछ सुस्थिर सा होता था। सामान्यतया सजातीय विवाह ही श्रेष्ट समझे जाते थे किन्तु अंतर्जातीय विवाह भी नितांत निषिद्ध नहीं थे। इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न संतान संकर वर्ण 'अंतराल' कहलाती थी। मौर्यकाल में बहुविवाह की प्रथा थी। उस समय ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, आसुर, गांधर्व, राक्षस एवं पैशाच विवाहों के आठ प्रकार प्रचलित थे। विधवा विवाह हेय स्थिति का द्योतक था। तलाक की प्रथा भी थी किन्तु उसके लिये विशेष नियम थे और विवाह के प्रथम चार प्रकारों में तलाक नहीं ली जा सकती थी। स्वयंवर और सतीप्रथा का प्रचलन भी था। कालिदास ने गांधर्व विवाह को निकृष्ट नहीं माना है। अपेक्षाकृत इस समय विवाह प्रौढ़ावस्था में सम्पन्न होता था।[21]

आलोच्य नाटक काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण अपनी–अपनी सीमाओं में रहते हुए भी नितांत असम्पृक्त नहीं थे। मौर्यकाल के प्रारम्भ में यद्यपि वैदिक कालिक समाज की भाँति ब्राह्मणों को आदर नहीं मिलता था किन्तु एतत्कालिक शासन व्यवस्था में एक बार पुनः ब्राह्मण वर्ण को प्रतिष्ठित किया परन्तु अशोक के शासन काल में बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण फिर इसमें शिथिलता आई।[22] वर्णव्यवस्था का आधार जन्म था। राजा इस वर्ण व्यवस्था का कठोरता से पालन कराते थे। वर्ण के साथ–साथ आश्रम व्यवस्था पर भी बल दिया जाता था। यहाँ तक की शिक्षा पाने

के लिये राजकुमारों तक को बड़े–बड़े गुरूकुलों में जाना पड़ता था।[23]

मौर्यकालीन शिक्षा भारतीय संस्कृति के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। शिक्षा का कार्य आचार्य, पुरोहित, श्रोत्रिय आदि करते थे जिन्हें राज्य ओर समाज की ओर से धन, भूमि आदि की पूर्ण सहायता दी जाती थी। तक्षशिला, उज्जैन, वाराणसी आदि शिक्षा के केन्द्र माने जाते थे। दो तरह के अन्तेवासी आचार्य से शिक्षा ग्रहण करते थे। प्रथम ''धम्मन्तेवासिक'' जो दिन में सेवा करते और रात में शिक्षा पाते और दूसरे ''आचारिय भागदायक'' जो आचार्य के घर ज्येष्ठ पुत्र की तरह शिक्षा प्राप्त करते थे और उसकी फीस चुकाते थे जो लगभग 1000 कार्षापण होती थी।[24] गुप्तकाल की भाँति नालन्दा महाविश्वविद्यालय शिक्षा का प्रख्यात केन्द्र था। यद्यपि उसे राज्य की ओर से संरक्षण मिला हुआ था फिर भी अन्तेवासी अपनी फीस देते थे। इस काल में शिक्षा संस्कृत और प्राकृत दो भाषाओं में दी जाती थी।[25]

वेदवेदांगों के साथ दर्शन, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, धनुषकला, सर्पविद्या, निधिकला आदि की शिक्षा भी दी जाती थी। चाणक्य जैसे नीति विशारद और वररुचि, पतंजलि जैसे महान वैयाकरण इस युग की शिक्षा की देन थे। उनके अतिरिक्त कालिदास, चरक, शूद्रक इत्यादि विद्वानों की शिक्षा का श्रेय भी तात्कालिकी पद्धति को ही हैं।[26]

प्रारम्भिक काल में सामान्यतया वैदिक देवताओं की उपासना का सर्वत्र प्रचार था। इद्र, वरुण आदि देवताओं की स्तुति और पूजा भी प्रचलित थी। वासुदेव कृष्ण और बलराम के उपासक भी थे। साथ ही नवोदित बौद्ध और जैनमत भी धीरे–धीरे अपने उत्कर्ष की ओर बढ रहे थे। ब्राह्मण धर्मी यज्ञों और अनुष्ठानों का प्रचार भी कम न था। इसके बावजूद मौर्यकाल में बौद्ध धर्म और जैन धर्म को अधिक उन्नति करने का अवसर मिला। स्वयं चन्द्रगुप्त मौर्य ने जैन साधु भद्रबाहु का शिष्यत्व स्वीकार कर जैन धर्मानुरूप दीक्षा ग्रहण की परन्तु गुप्तकाल में सनातन धर्म ने पुनः अपनी लुप्त प्रतिष्ठा का उद्धार कर लिया।[27]

आलोच्य नाटक युगों में भारतीय समाज सुख–सुविधा के साधनों से सम्पन्न था, कला कौशल की उन्नति में सचेष्ट था एवं आमोद–प्रमोद में पर्याप्त विकासशील था। इस समय आर्थिक स्थिति सुव्यवस्थित थी। देश के आर्थिक जीवन का बहुत बडा भाग राज्य के नियंत्रण में था। देश के कृषि, उद्योग तथा व्यापार पर राजा का नियंत्रण था। इधर गुप्तकाल भारतीय इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से विख्यात रहा है। आध्यात्मिक उन्नति के साथ साथ धन–धान्य की भी प्रचुर वृद्धि थी।

गुप्तकाल में जनता वैभवशालिनी थी तथा सुख से अपना जीवन व्यतीत करती थी। भारतीय अर्थव्यवस्था में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान कृषि का रहा है। मौर्यकाल में व्यापार पर सम्पूर्ण नियंत्रण राजा का ही होता था।

व्यापार के लिये नियत पण्यशालाएँ होती थी जहाँ माल का क्रय–विक्रय किया जाता था। व्यापार में झूंठ, मिलावट, कपट, सट्टेबाजी, चोरी इत्यादि पर राज्य कठोर दण्ड की व्यवस्था करता था। देश के विभिन्न भागों से विभिन्न प्रकार का व्यापार होता था।

विवेच्य नाटकों के काल में राजनीतिक सत्ता, सुदृढ़ और सुव्यवस्थित थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अत्याचारी नंदवंश का नाश कर तथा यूनानी प्रभाव के जुए को दूर कर भारत की राजनीति को पहली बार एकच्छत्र रूप प्रदान किया था।

मौर्य और गुप्त सम्राटों ने भारत के छोटे–मोटे राज्यों को जीतकर एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया था। प्रशासन की सुविधा के लिये विशाल साम्राज्य को केन्द्रीय, प्रांतीय और स्थानीय शासन विभागों में विभक्त कर रखा था। केन्द्रीय शासन में प्रधान राजा था जो समस्त सत्ता का स्त्रोत था।[28]

विशाल मगध साम्राज्य में अनेक न्यायालय थे। सबसे छोटा न्यायालय ग्रामसंस्था का फिर संग्रहण का फिर द्रोणमुख का और फिर जनपद का। इनके ऊपर पाटलिपुत्र का न्यायालय था तथा सर्वोच्च न्यायाधीश राजा होता था। न्यायालय दो भागों में विभक्त थे– धर्मस्थीय एवं कंटकशोधन। दण्डनीति कठोर थी।[29]

गुप्त के शासन में चार प्रकार के न्यायालय थे– राजा का न्यायालय, पूग, श्रेणी तथा कुल। राजकीय आय का मुख्य साधन कर था। ये नियमित कर, सामयिक कर, अर्थदंड, राज्य सम्पत्ति से आय, अधीन सामंतों से उपहार के रूप में प्राप्त होते थे।कला कौशल की दृष्टि से आलोच्य काल स्वर्ण काल माना जाता रहा है। इस युग में साहित्य, शिल्प, विज्ञान एवं अन्य कलात्मक सृष्टि को पूरा प्रोत्साहन मिला। इस समय अर्थशास्त्र, कामसूत्र, अष्टाध्यायी, अमरकोश, पंचतंत्र, स्मृतियाँ, महाकाव्य आदि ग्रंथ लिखे गए। वस्तुतः इस युग का जीवन सुखमय था इसलिए विभिन्न प्रकार की कलाओं को उन्नति करने का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। साहित्य, संगीत, शिल्प, विज्ञान ने इस काल में आश्चर्यजनक उन्नति की। निःसन्देह मौर्य युग और गुप्तकाल भारतीय संस्कृति के स्वर्णकाल रहे जिनकी झलक तात्कालिक नाटकों में मिलती है।[30]

❖conclusion

भारतीय सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में अनुसंहित संस्कृत नाटकों के आलोक में कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति के इस रूपचित्र को सामने रखकर वर्तमान समाज अपनी भूलों को सुधार सकता है। अपने रूप का परिष्कार कर सकता है और अपने नैतिक दृष्टिकोणों की दृढ़ प्रस्थापना कर सकता है। आज समाज के सामने एक लक्ष्यभ्रंश की स्थिति उपस्थित है। इस दृष्टि से भारतीय समाज संतोषप्रद प्रतीत नहीं होता है। काम–क्रोधादि मनोविकारों के प्रभाव से व्यक्तिगत,

सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, राष्ट्रीय चेतना व देश–प्रेमादि अमूल्य गुणों का पतन तीव्रगति से होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में इसका परिशोध महाकवि भास व भवभूति की रचना धर्मिता के विशेष पक्ष 'भारतीय संस्कृति' के मूल तत्त्व के परिशीलन से जनसामान्य की कुप्रवृत्तियों व प्रदूषित भावनाओं को दूर कर उनमें सदाचार, सद्भावना, परोपकार, नैतिक चरित्रता, सद्प्रवृत्ति एवं सामाजिक भावना इत्यादि गुणों को प्रस्थापित किया जा सकता है।

संदर्भ सूची–

1. भारतीय संस्कृति–रमाकान्त त्रिपाठी चौखम्बा विद्याभवन, 2040वि.स. की झलक वाराणसी
2. संस्कृत साहित्य–आचार्य बलदेव शारदा निकेतन, 2001 ई॰ का इतिहास उपाध्याय वाराणसी
3. दशरुपकम्–भोलाशंकर व्यास चौखम्बा विद्याभवन, 1967 ई॰ वाराणसी
4. नाट्यशास्त्र–सुधा रस्तौगी चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 1973 ई॰ वाराणसी
5. वेदः जीवन सृष्टि–डॉ. बद्रीप्रसाद अर्चना प्रकाशन, 2006 ई॰ और जीवन दृष्टि पंचोली अजमेर
6. कालिदास–पं० ब्रह्मानन्द चौखम्बा सुरभारती, 1993 ई॰ ग्रन्थावली त्रिपाठी वाराणसी
7. मालविकाग्निमित्रम्–डॉ० बुद्धि शर्मा चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2069वि.सं. वाजपेयी वाराणसी
8. विक्रमोर्वशीयम्–डॉ० गंगासागर राय चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2070वि.सं. वाराणसी
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–डॉ० प्रभाकर शास्त्री पंचशील प्रकाशन, 2006 ई॰ जयपुर
10. लौकिक संस्कृत–श्री चारूचन्द्र विद्याभवन संस्कृत, 2006 ई॰ साहित्यग्रंथमाला शास्त्री वाराणसी
11. संस्कृत साहित्य–वाचस्पति गैरोला चौखम्बा विद्याभवन, 1960 ई॰ का इतिहास वाराणसी
12. संस्कृत शास्त्रों–पं. बलदेव ज्ञानमण्डल लिमिटेड, 2003 ई॰ का इतिहास उपाध्याय वाराणसी
13. संस्कृत साहित्य का–प्रो॰ रामजीलाल चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 2002 ई॰ आलोचनात्मक इतिहास उपाध्याय वाराणसी
14. संस्कृत साहित्य का– डॉ० कपिल द्विवेदी चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 1995 ई॰ समीक्षात्मक इतिहास वाराणसी
15. काव्यप्रकाश– मम्मट साहित्य भण्डार, मेरठ 1979 ई॰
16. दशरूपक–श्रीनिवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ 1979 ई॰
17. ध्वन्यालोक –जगन्नाथ पाठक चौखम्बा विद्याभवन, 1987 ई॰ वाराणसी
18. नाट्यशास्त्र–भरतमुनि चौखम्बा प्रकाशन, 1927 ई॰ वाराणसी
19. मनुस्मृति–आचार्य मनु चौखम्बा संस्कृत सीरिज, 1965 ई॰ वाराणसी
20. शुक्रनीति–पं० ब्रह्मशंकर मिश्र चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 1968 ई॰ वाराणसी
21. श्रीमद्भगवद्गीता– महर्षि व्यास गीता प्रेस, गोरखपुर 1997 ई॰
22. वाल्मीकि रामायण– महर्षि वाल्मीकि इलाहाबाद 1950 ई॰
23. श्रीमद्भागवत– महर्षि व्यास गीता प्रेस, गोरखपुर 1997 ई॰
24. हिन्दू संस्कार– डॉ० राजवली चौखम्बा विद्याभवन, 1966 ई॰ पाण्डेय वाराणसी
25. महाभारत,– रामचन्द्र शास्त्री व चित्रशाला प्रेस, पुणे 1932 ई॰ अनुशासन पर्व शंकर नरहर जोशी
26. भारतीय संस्कृति–डॉ० किरण टण्डन ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 1994 ई॰ दिल्ली
27. साहित्य और–डॉ. श्यामलाकान्त विद्याभारती संस्कृत 2006 ई॰ सिद्धान्त वर्मा ग्रंथमाला
28. संस्कृति का–डॉ. देवराज प्रकाशन ब्यूरो सूचना विभाग, 1957 ई॰ दार्शनिक विवेचन उत्तरप्रदेश
29. संस्कृत नाटको– डॉ. अनिल कुमार हंसा प्रकाशन, 2006 ई॰ में भारतीय समाज झा जयपुर
30. कौटिलीय– वाचस्पति गैरोला चौखम्बा विद्या भवन, 1960 ई॰ अर्थशास्त्र वाराणसी

RRIJM 2015, All Rights Reserved